मेरे स्कूली अनुभव

मुकेश मालवीय

फोटो : मुकेश मालवीय

एक शिक्षक के अपने शिक्षण के अनुभव क्या हैं? इस बात पर अनौपचारिक (चलता-फिरता संवाद) और औपचारिक (लिखने-पढ़ने और औरों को बताने के लिए किया गया गम्भीर संवाद या लेख), दोनों तरीक़ों में अपेक्षा होगी कि कोई शिक्षक अपने शिक्षण के तरीक़ों पर, बच्चों के सीखने पर, पाठ्यपुस्तकों पर, पाठ्यक्रम पर, टिप्पणी करेंगे, पर हमें ज़्यादातर संवादों में सरसरी बातें ही पता चलती हैं। ये बातें या तो बच्चों के लेकर पुरानी मान्यताओं, न सीखने के परम्परागत कारणों, ग़ैर-शैक्षणिक व्यस्तताओं, व्यवस्थाओं आदि को लेकर होती हैं या आधुनिक प्रचलन जैसे– खेल-खेल में शिक्षा, गतिविधि-आधारित शिक्षा, पुस्तकालय के प्रयोग आदि पर सर्वमान्य विचारों के उद्‌गार के रूप में पता चलती हैं।

असल में शिक्षण प्रक्रिया हम ज़्यादातर शिक्षकों के लिए एक रुटीन दिनचर्या की तरह है और इस शिक्षण प्रक्रिया के अनुभव अधिकांश शिक्षकों के पास लगभग एक जैसे ही हैं। इसलिए इसमें 'विशेष' का बोध हमारी स्मृति में नहीं आता। चूँकि शिक्षा की बातचीत और विषय, शिक्षण की विधियों, पाठ्यपुस्तकों की सामग्री, विषयों की अवधारणाओं एवं इनके मूल्यांकनों आदि पर ही केन्द्रित होते हैं। इसलिए इन बातों में आदर्श या विशिष्टता (अलगपन) के अनुभव की स्मृतियाँ गिने-चुने शिक्षकों के पास ही हैं।

यदि हम स्कूल और शिक्षा की बातचीत के विषयों के दायरे में थोड़ा फैलाव लाएँ और किसी शिक्षिका या शिक्षक को छूट दें कि वे स्कूल से जुड़ी कुछ बातें, जो उन्हें सहज ही याद आ जाती हैं, बताएँ। निश्चित ही तब हमें बहुत-सी ऐसी बातें पता चलेंगी जिन्हें हम शायद शिक्षा के घर में न सही, पड़ोस में ज़रूर रखना चाहेंगे।

यदि यही बात कोई मुझसे कर रहा होता कि मुझे शिक्षा के कार्य अनुभव में अनायास ही क्या याद आता है तो मैं यह सब बताना चाहूँगा।

मुझे अपने स्कूल की नौकरी के शुरुआती दिन याद आते हैं। मैं अपने घर से लगभग 10 किलोमीटर दूर सायकिल से एक जंगलभरे रास्ते से स्कूल जाता था। वह पगडण्डी वाला रास्ता, पेड़, पत्थर, नदी, नाले और रास्ते में मिलने वाले लोग और जानवर, ये सब 10 वर्षों तक नियमित मिलने के कारण मेरे लिए व्यक्तिवाचक संज्ञा बन गए थे। इन सबसे मिलकर मेरे स्कूल पहुँचने की याद बनती है। मेरे पहुँचने के पहले ही स्कूल खुल जाता था। स्कूल बच्चों का था, और उन्हें मालूम था कि उसे कब खोलना है और स्कूल खोलने के बाद क्या-क्या करना होता है। यह स्कूल मुझपर केन्द्रित नहीं था। जबकि मैं इस स्कूल का ही नहीं, उस गाँव का भी इकलौता शिक्षक था।

स्कूल और गाँव की ज़रूरत और ज़िम्मेदारी हम एक दूसरे को बताए बिना सीख रहे थे। स्कूल में बच्चों की पढ़ाई की कोई विशेष याद मुझे नहीं है, पर यह याद आता है कि हर साल हम स्कूल की मरम्मत करते थे जिसमें बच्चे स्कूल की छत के कवेलू छाने से लेकर चारों तरफ़ बागड़ (बाँस और लकड़ी की बाउण्ड्री) करने का काम करते थे। उस समय स्कूल के पास से गुज़रने वाला कोई-न-कोई ग्रामवासी इस काम में शामिल हो ही जाता। उस स्कूल की याद में मुझे बच्चों का खेलना याद रह गया है जहाँ लड़कियाँ नए-नए खेल ईजाद करतीं। हर दस-पन्द्रह दिन में उनके खेल बदल जाते। वो कूदने का खेल खेलतीं जिसमें ऊँचाई हाथ के दो पंजों से शुरू होती जो हाथ दो हाथ पीट ऊची पीट इस तरह बढ़ती जाती। कुछ पुराने खेल होते जिन्हें मैंने भी खेला था, तो कुछ बिलकुल नए। इन खेलों में बच्चे नियम बनाते फिर कुछ दिनों तक इसे परम्परा की तरह निभाते। मैं इनके खेलों को ध्यान से देखा करता, उनका खेलों में चुनौती का स्तर बदलते रहना, सहकार के साथ खेलना, सामूहिक नेतृत्व करना, रोचकता बनी रहे इसके लिए नए बदलाव करना, आदि। मुझे लगता कि इन्हें अधिकतर समय स्कूल में खेलना ही चाहिए और इस स्कूल में अलग-अलग तरह से ऐसा होता भी था। बच्चे कक्षा के अन्दर बैठे होते तब भी कुछ-न-कुछ खेल ही रहे होते। मैंने इसी स्कूल में बच्चों से ये 'गीत खेल' सीखा जिसमें वे दो समूहों में बँटकर यह पंक्ति गाते :

एक समूह – घोटल मोटल खोपरा खाए
दूसरा समूह – गाड़ी पे बैठकर जतरा जाए।

कुछ देर बाद ये पंक्ति बदलने लगती। इसमें खाने की चीज़ का नाम बदल जाता। फिर जाने की जगह बदल जाती। बैठकर जाने वाला वाहन बदल जाता और घोटल मोटल के नाम भी बदल रहे होते। अब हर बार एक बिलकुल नई पंक्ति बोली जाती। जैसे–

कुंती दसिया जलेबी खाए
सायकिल पे बैठकर बाज़ार जाए।

कभी वे गिनती का खेल खेलते जिसमें गोले में बैठकर गिनती क्रमशः बोलते जिसमें गिनती आगे बढ़ने का क्रम उनकी हाथ की दिशा पर तय होता। उसी दौरान मैंने भी इस तरह के आगे बढ़ाने वाले गीत सीखे थे, जिनमें हरेक को अपना नया वाक्य या वस्तु जोड़नी पड़ती थी। जैसे– हम तो सो रहे थे हमें मुर्ग़ी ने जगाया बोली, 'कुकड़ूँ कूँ'। अगले बच्चे को जगाने वाले और कैसे जगाया, यह पंक्ति नई तरह से जोड़ना होती। इसी तरह का एक और खेल था– 'मैं जाऊँगा रंगून, वहाँ से जाऊँगा देहरादून।' इसमें हरेक बच्चे को पिछली बोली हुई सारी जगहों के नाम बोलते हुए अपने एक नए शहर का नाम जोड़ना होता। इस तरह कुछ गतिविधियाँ कभी मेरी उपस्थिति में या अकसर मेरी अनुपस्थिति में इन कमरों में चल रही होतीं। मुझे याद आता है कि हमने सर्वे करने का खेल ईजाद किया था। साल में एक बार मुझे गाँव का सर्वे करना होता था जिसमें कुछ बच्चे मेरे साथ होते थे। इस सर्वे के आँकड़े मैं बच्चों को बताता था जैसे कि इस साल हमें 5 से 6 वर्ष वाले 15 बच्चे मिले हैं इन्हें पहली कक्षा में दर्ज करेंगे। कुछ सवाल मैं बच्चों के सामने रखता, जैसे– हमारे इस गाँव में कितने परिवार रहते हैं। बच्चों

के अन्दाज़े सही नहीं होते। हम बातचीत करते कि हमें हमारे गाँव के हरेक घर के बारे में तो पता है कि कहाँ कौन रहता है, पर कुल घरों की संख्या पता करने के लिए हमें सारे घरों को गिनना पड़ेगा। सर्वे में बच्चों की रुचि को देखते हुए हमने बच्चों के समूह बनाकर गाँव में जाकर कुछ छोटे-छोटे सर्वे किए। गाँव के परिवारों के पास बकरियों, गाय, भैंस आदि की संख्या पता करना, कितने घरों के आसपास पेड़ लगे हैं, गाँव में कुल कितने नीम के पेड़ हैं। कुछ सर्वे कक्षा की बातचीत में भी होते, जैसे– पता करना कि कक्षा 5 में किस बच्चे के घर में कितने लोग रहते हैं। आज किसने नहाया या किस-किस के घर में आज मक्के की रोटी बनी है।

इन कक्षाओं में बच्चे एक पंक्ति से उठकर दूसरी पंक्ति या दूसरे कमरे के बच्चों के बीच जाकर बैठ सकते थे और उनके किए जा रहे काम में हस्तक्षेप कर सकते थे। मेरे नियोजन से नहीं बल्कि यह बच्चों द्वारा बनाई गई व्यवस्था थी जिसे मैंने स्वीकार कर लिया था। स्कूल के दौरान सारे बच्चे स्कूल के अन्दर होंगे ऐसा कम ही होता था। कुछ स्कूल के आसपास, कुछ स्कूल से थोड़ी दूर वाली नदी के आसपास, तो कुछ और ज़्यादा दूर तक दिखाई दे सकते थे।

ये बातें समझने के लिए कुछ परिस्थितियों का उल्लेख भी करना चाहता हूँ ताकि विश्वसनीयता का धागा जुड़ा रहे। स्कूल में दो छोटे कमरे हैं और एक छपरपट्टी है। इसमें 100 से अधिक बच्चों को बैठना है। बच्चों की बाह्य सौन्दर्य की छवि शहरी और सम्पन्न बच्चों की तरह तो नहीं है, पर दयनीय भी नहीं है। ये आत्मविश्वास से भरे हुए बच्चे एक थैले में स्कूल से दी हुई पाठ्यपुस्तकों के साथ एक स्लेट लिए सुबह होने के दो-तीन घण्टे बाद स्कूल के आसपास आ जाते हैं या कई-कई दिन स्कूल के समय के दौरान स्कूल की तरफ़ झाँकते भी नहीं। एक तरह का स्वतंत्र व्यक्तित्व लिए ये घर और परिवेश के उन्मुक्त (दबावरहित) माहौल में बड़े हो रहे होते हैं। इनपर पराए नियमों का पालन बाध्यकारी नहीं हो सकता। यह समझ मैंने इस गाँव में लगभग दस वर्ष की अन्तरंगता से हासिल की। ये बड़ों की तरह घर की बहुत सारी ज़िम्मेदारियों का निर्वहन कर रहे होते हैं। स्कूल इन्हें तभी आकर्षित कर सकता है जब वहाँ इन्हें अपनी स्वतंत्रता और आनन्द का माहौल उपलब्ध हो।

मुझे इस स्कूल में बहुत-सी ऐसी सामग्री दिखी जो सालों से बन्द होने की वजह से कबाड़ बन गई थी। इसमें से कुछ को मैंने बच्चों की जद में ला दिया। इसमें कुछ किताबें थी– कहानियों की, कविताओं की, चित्रों की। ये रोचक किताबें थीं जिन्हें पढ़ने में मुझे आनन्द आता था, तो लगभग सारी किताबें मैंने पढ़ डालीं और कुछ बच्चों ने भी।

एक मोटी रस्सी भी इस भण्डार में मुझे मिली। स्कूल के चारों तरफ़ आठ पेड़ थे। एक पेड़ पर इस रस्सी का झूला डाल दिया गया। यह झूला उन पेड़ों की तरह स्कूल का होते हुए भी स्कूल से स्वतंत्र था।

बीस साल पुरानी इस स्कूल की याद में दस-बारह बच्चों की छवि और नाम मुझे आज

फोटो : मुकेश मालवीय

भी याद हैं। राजू रमसा, डोमू, गुलाब, दसिया, शिवकली, मोकल आदि। ये क्यों याद हैं मुझे? इनमें से पढ़ने में कोई अव्वल नहीं था, पर असाधारण जुड़ाव की स्मृतियाँ मेरे लिए इन्हें यादगार व्यक्तित्व बनाती हैं। राजू रमसा भोला भाला था। उससे प्रेरित होकर मैंने एक कहानी लिखी थी जो *चकमक* में प्रकाशित हुई थी। डोमू की माँ नहीं थी, यह मुझे बहुत बाद में पता चला। वह स्कूल की ज़िम्मेदारी में सबसे आगे रहता था। गुलाब और दसिया बच्चों के झगड़े निपटाने में अपनी पहचान क़ायम किए हुए थे। इसी तरह मोकल सिंग को चौथी कक्षा में ही ईंट जुड़ाई करना आ गया था और वह अपने पिता के साथ यह काम करने चला जाता था।

कुछ ऐसी बातें भी मुझे याद आती हैं जो निराश करती हैं। सोचता हूँ इन्हें नहीं होना था। जैसे एक दूसरे स्कूल में शुरू-शुरू में जब मैं बच्चों से अपरिचित था तब बच्चों के बारे में यह जानकारी इकट्ठी करनी थी कि हरेक बच्चे के पिता कौन-सा काम करते हैं। कक्षा 6 में जाकर मैं हरेक बच्चे से यह पूछ रहा था। मैं बच्चों का नाम पुकारता और बच्चे अपने पिता के काम के बारे में बताते। ज़्यादातर किसान, मज़दूर, मिस्त्री, कारपेंटर जैसे शब्द बोल रहे थे। एक लड़की का नाम पुकारने पर उसने धीरे से कुछ कहा। मुझे ठीक से समझ नहीं आया तो मैंने दुबारा पूछा। तब भी उसने जो बोला वो मुझे समझ नहीं आया। मैंने झल्लाकर ज़ोर से बोलने को कहा तो लड़की ने तब भी धीरे से बोला और उसकी आँखों में आँसू आ गए। इस बार मुझे सुनाई दिया था, उसने कहा था कि पिताजी जेल में हैं। मैं अवाक् था, भौचक था, अपने-आप से शर्मिन्दा था, मुझे सूझा ही नहीं कि क्या करना चाहिए। मैं सिर्फ़ इस क्षण को जितना छोटा हो सके उतना छोटा और सहज करने की कोशिश में तुरन्त अगले बच्चे का नाम पुकारने लगा।

जब मैं पहवाड़ी के मिडिल स्कूल में था तब वहाँ कक्षा आठवीं की एक लड़की थी, जो पास के गाँव से पढ़ने आती थी। बोर्ड की परीक्षा में वो पहले ही दिन पेपर देने के समय तक नहीं आई। मैं उसे ढूँढ़ने उसके घर गया तो पता चला कि वह महुआ बीनने चली गई। मैं उसके छोटे भाई को लेकर वहाँ पहुँचा और उसे वहीं डाँटने लगा। उसने रोते हुए कहा कि मुझे पेपर नहीं देना। उसकी माँ एक साल पहले नहीं रही और अभी चार दिन पहले ही उसके पिताजी ने दूसरी शादी कर ली थी। ख़ैर, मैंने उसे समझाकर पेपर देने के लिए किसी तरह मनाया।

एक और बालक के साथ अपने व्यवहार को लेकर मैं शर्मिन्दा हूँ। वह कक्षा 6 का बालक था और प्राय: कक्षा में नेतृत्वकर्ता की भूमिका में रहता था। हमारे स्कूल में एक नई मैडम, जो पहली बार ही बच्चों को पढ़ा रही थीं, कुछ दिनों से इस कक्षा को पढ़ा रही थीं। उनकी शिकायत थी कि यह बालक कक्षा में बहुत शैतानी करता है और मेरा रोब बिलकुल नहीं मानता। एक दिन मैं एक दूसरी कक्षा में पढ़ा रहा था और पास की कक्षा में बहुत होहल्ला हो रहा था। मैंने उस कक्षा में झाँका तो नई मैडम परेशान थीं और बच्चे उन्हें सुन नहीं रहे थे एवं यह बालक इधर-उधर घूम रहा था। जाने मुझे क्या हुआ कि मैं ज़ोर से चिल्लाया और उस कक्षा में जाकर इस बालक को पकड़कर, उसके कन्धे झकझोरते हुए उसे उसके स्थान पर बैठा दिया। सभी बच्चे शान्त हो गए। यह बालक बहुत भयभीत हो गया था। कुछ समय बीत गया, पर उस दिन से इस बालक के मन में मेरी छवि ख़राब हो गई। मैंने उससे प्यार जतलाने की कई कोशिशें कीं, पर उसने लगभग सालभर मुझसे बात नहीं की। मैं सोचता हूँ कि उस दिन मैंने ऐसा क्यों किया। मैं किसपर अपना रोब झाड़ना चाहता था— बच्चों पर या उस नई मैडम पर।

एक दो बार ऐसा भी हुआ कि बच्चे मेरी कोई ग़लती पकड़ लेते थे। जैसे, एक बार मैं सम पंचभुज के कोणों की माप को लेकर ग़लतफ़हमी या शिक्षकीय दम्भ में था और बच्चों के उत्तरों को ग़लत ठहरा रहा था। जब पाँच-सात बच्चों का उत्तर एक जैसा ही आया तो मैंने उनपर

नक़ल करने का आरोप भी लगा दिया। बच्चे उस दिन मेरी ग़लत बात मान गए, अगले दिन मुझे अपनी ग़लती का एहसास हुआ तब भी मैं खिसियाता हुआ बच्चों को झूठे स्पष्टीकरण देता रहा। बाद में मुझे लगा कि मेरे अन्दर कितना कमज़ोर शिक्षक है जो बच्चों के सामने अपनी ग़लती स्वीकारने से डरता है।

स्कूल में हरेक बच्चा अपनी व्यक्तिगत पहचान के साथ होता है, पर मैं कितने कम बच्चों को उनकी इस पहचान के साथ जानने की कोशिश करता हूँ। स्कूल बच्चों की व्यक्तिगत पहचान को समूह की पहचान में तब्दील करने पर आमादा होते हैं। स्कूल में बच्चे हमारे लिए समूहवाचक संज्ञा बन जाते हैं।

तो मैं वापस यादों पर लौटना चाहता हूँ। कुछ अच्छी यादें हैं जो सुकून देती हैं। मैंने अभी के अपने नए स्कूल में दो बड़े ब्लैकबोर्ड बाहर की दीवार पर लगाए जिनमें बच्चों को अपने मन की बात लिखने का आग्रह किया गया। यह स्कूल बड़ा स्कूल है जिसमें मेरे अलावा भी दस शिक्षक हैं। मैं बच्चों से साधारण बात, जो उनकी मौलिक हो, लिखने के लिए कहता लेकिन बच्चे ऐसी बातें लिखते जिन्हें नीति वाक्य कहते। अन्य शिक्षकों का भी यही निर्देश होता। तो हमने एक बोर्ड पर नीति वाक्य और एक पर मन की बात लिखना चालू किया। मौलिक बात क्या हो, इसकी शुरुआत बच्चों के जन्मदिवस की बधाई और शुभकामनाओं से हुई। इसमें जिस बच्चे जन्मदिन होता उसके नाम के साथ उसके लिए अपने विचार लिखने के लिए कुछ बच्चे आगे आए। फिर इसमें अन्य छोटी मोटी घटनाओं का लेखन भी होने लगा।

छुट्टी से पहले एक कालखण्ड खेल का होता है। इसमें मैंने देखा कि कुछ बच्चे खेलने के बजाय एक जगह बैठकर बातचीत करते। इससे मुझे आइडिया आया कि क्यों न हम एक कमरे में गुफ़्तगू का कालखण्ड शुरू करें। तो हमने 'आओ बात करें' नाम से एक कमरे में लगभग एक घण्टे की बातचीत शुरू की। हर दिन एक नए विषय पर बातचीत रखी जाती, जिसमें बच्चों को अपनी बात रखने और उन बातों को गम्भीरता से सुनने, उनपर अपना तर्क रखने और समझ ज़ाहिर करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता। जैसे, एक दिन इस चर्चा में 'डर' पर संवाद हो रहा था कि आपको किस-किस से डर लगता है और क्यों लगता है? तो एक-दो बच्चों ने कहा कि हमें शिक्षकों से डर लगता है क्योंकि वे हमें मार सकते हैं। मैंने कहा कि तुम दोस्तों में भी तो झगड़ा और मारपीट भी हो जाती है, तो क्या तुम्हें अपने दोस्तों से भी डर लगता है। इसपर एक बच्चे ने कहा कि दोस्त से डर नहीं लगता। यदि कोई दोस्त मारता है तो हम भी उसको मार सकते हैं। बड़े लोगों से डर लगता है और टीचर डाँटते हैं इसलिए उनसे डर लगता है। तब मैंने कहा कि घर में माता-पिता बड़े होते हैं और वे भी तो डाँटते हैं, तो क्या उनसे डर लगता है। एक लड़की ने कहा कि माता-पिता से तो रिश्ता होता है न, इसलिए उनसे क्यों डर लगेगा। अच्छा, मैंने कहा कि क्या किसी को अपनी बराबरी वाले से भी डर लगता है। एक लड़की ने कहा कि हाँ, लड़कों से डर लगता है वे हमें कुछ भी बोल सकते हैं। अन्य लड़कियों ने कहा कि नहीं, लड़कों से डर नहीं लगता। क्या लड़कों को लड़कियों से डर लगता है, इस तरह बात आगे बढ़ती रही।

इस बातचीत के कालखण्ड का आकर्षण बच्चों में बढ़ने लगा था। इसमें मेरी कोशिश होती कि बच्चे अधिक-से-अधिक बोलें। जब कोई बोल रहा है तो उसकी पूरी बात को सुना जाए। जो बच्चे नहीं बोल रहे हैं उनसे पूछना कि उनका क्या मत है। बात को तय विषय पर केन्द्रित रखने की कोशिश करते रहना, बातचीत में गम्भीरता का माहौल बनाए रखना, और बच्चों को बातचीत से ही यह एहसास कराना कि उनके द्वारा बोली गई बात महत्त्वपूर्ण है।

एक और नई प्रक्रिया हमने प्रारम्भ की। स्कूल में एक मासिक पर्चा निकालना प्रारम्भ किया। इसमें हम किसी एक विषय, जैसे– छुट्टियों की

बातें, बारिश ओ बारिश, परीक्षा आई, आदि पर उनके लिखित विचारों को इकट्ठा करते और इन्हें एक या दो कार्ड शीट पर लगाकर प्रकाशन बोर्ड पर लगा दिया जाता। इस लेखन का एक नमूना यह है।

कुछ बातें खेलों पर भी करना चाहते हैं। स्कूल में शिक्षक की उपस्थिति में खेले जाने वाले खेल वर्षों से एक जैसे ही हैं, जैसे– लड़कियों के लिए कुर्सी दौड़, रस्सी कूदना, खो-खो, दौड़ आदि और लड़कों के लिए कबड्डी, क्रिकेट, फ़ुटबॉल, दौड़ आदि। खेल कालखण्ड में शिक्षक बच्चों के साथ कम ही होते हैं। बच्चे जब ख़ुद ही खेल रहे होते तो वे कई नए खेल बना रहे होते हैं। मैंने एक दिन उन्हें छोटी गेंद से फ़ुटबॉल की तरह खेलते देखा। इतनी छोटी गेंद को पैर से मारना मुश्किल होता है तो मैंने उन्हें नए खेल सुझाए। गेंद को सिर पर रखकर सन्तुलन बनाकर इस तरह चलना कि गेंद सिर से गिरे नहीं। फिर हमने गेंद को दो बच्चों को पीठ में दबाकर, फिर गालों में दबाकर और दो नाकों से दबाकर चलने को कहा। और इसका एक फ़ोटो भी है मेरे पास।

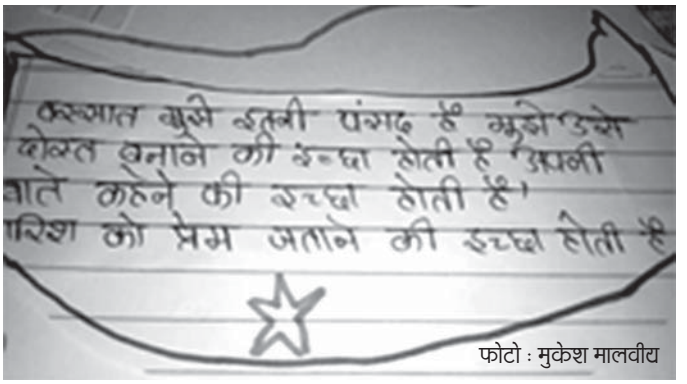

फोटो : मुकेश मालवीय

इस तरह नए खेल हमने ईजाद किए जिनमें चुनौतियाँ और नई तरह की बाधाएँ हर्ष और मनोरंजन का उत्कर्ष ला देतीं। हमने लड़कियों को भी इन खेलों में बराबरी से शामिल किया, चाहे वो पेड़ पर चढ़ना, रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ना जैसे साहसिक खेल ही क्यों न हों।

अब बस करते हैं। यादें तो जितना याद करो उतनी बढ़ती ही जाती हैं। यह अलग बात है कि इन बातों के कोई शैक्षिक निहितार्थ हो सकते हैं या नहीं।

फोटो : मुकेश मालवीय

मुकेश मालवीय पिछले दो दशक से भी ज़्यादा समय से स्रोत शिक्षक के रूप में सरकारी और ग़ैर–सरकारी भूमिकाओं में सक्रिय हैं। कक्षा अनुभवों को लेकर सतत लिखते रहते हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति विकास विभाग के शासकीय आवासीय ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mukeshmalviya15@gmail.com